रंगमंच और महिला

सुना है कि इब्सन के नाटक 'डोल्स हाउस' के मुख्य पात्ररूप नोरा ने नाटक के अंत में अपने पति के घर के मुख्य द्वार को घर से निकलते वक्त उल्टे पांव से जिस तरह बंद किया तब मानों पूरे यूरोप में हड़कंप मच गया। ये बीसवीं सदी के शुरूआती दौर की घटना है। कहा जाता है कि, उस नाटक में पहली बार मुख्यधारा के रंगमंच पर किसी स्त्री–पात्र का इस तरह अपने स्वाभिमान के लिये पति का घर छोडने का चित्रण हुआ। युरोप में आधुनिकता के लिये आंदोलन तो करीब तीन सदी पहले शुरू हुए थे, पर समाज में महिलाओं को पुरूष के समान दरज्जा और अधिकार देने का सवाल आधुनिकता के एजन्डे पर बीसवीं सदी के शुरूआती दौर में आया।

उसी दौर में युरोप–अमेरिका में महिलाओं की जो 'सफ़्रेजेट मूवमेंट' चली उसमें कहा जाता है कि, कई महिलाओं ने आंदोलन के प्रचार–प्रसार और उसे गति देने के लिये कई नाटक लिखे पुरूषों का नाम धारण कर के। पुरूषों के नाम से स्त्रीओं द्वारा लिखने का सिलसिला उन्नीसवीं सदी में ही शुरू हो चुका था।

यह मानव समाज की विडंबना नहीं तो और क्या है? रंगमंच–थियेटर–को इन्सान की सबसे पहली भाषा माना जाता है, लेकिन फिर भी उसमें महिलाओं को शामिल करने में मानव–सभ्यता को हज़ारों साल लगे। क्यों? सवाल बहुत गहरा और जटिल है। समाज विज्ञानी इसके उपर ज्यादा प्रकाश डाल सकते हैं। सांस्कृतिक कर्मशील या तो रंगकर्मी होने के नाते मेरा सवाल तो यह है कि –अगर रंगमंच समाज का दर्पण है तो समाज के आधे हिस्से को उसने हजारों साल तक पीछे ही क्यों रखा? उस में दो राय नहीं कि मानव सभ्यता के विकास में रंगमंच हमेशा से ही अहम भूमिका अदा करता रहा है, सभ्यता को दिशा और गति देता रहा है, फिर भी उसने महिलाओं की स्वतंत्रता, समानता के सवालों पर खुलकर पिछली सदी में ही बात शुरू की; क्यों?

खैर, हम वापस आधुनिकता के उस दौर में लौटे जिस में महिलाओं के सवाल रंगमंच पर उठने लगे, जिस में महिलाएं रंगमंच के साथ खुले तौर पर सक्रियरूप से जुड़ी। बीसवीं सदी में महिलाओं ने नाटक लिखना और खेलना शुरू किया। सिर्फ इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पूरे समुदाय के सवालों को भी रंगमंच पर पेश करना शुरू किया। साथ साथ महिला लेखिकाओं और रंगकर्मीओं ने समाज के अन्य शोषित समुदायों के सवालों को भी रंगमंच पर उतारना शुरू किया। उन्नीसवीं सदी से शुरू हुई रंगमंच की आधुनिकता की खोज़ में महिलाएं और अन्य शोषित समुदायों के शामिल होने से एक तरह से रंगमंच यथार्थरूप में मानव–सभ्यता के विकास का साधन बन गया। अलबत्ता, आज भी वह सवाल तो है कि वह यथार्थरूप से कितना आधुनिक है? क्या वह यथार्थ आधुनिकता के लिये कोई बात कर रहा है?

मैं अभी अपने विषय से भटककर सार्थक आधुनिकता के बारे में बात करना नहीं चाहता, पर इतना ज़रूर कहूंगा कि मानव–समाज सार्थकरूप में आधुनिक तब ही बन पायेगा जब रंगमंच और सभ्यता के अन्य साधनों की बागडोर महिलाएं और समाज के अन्य शोषत समुदायों के हाथ में होगी। पिछली सदी में रंगमंच पर शोषित समुदायों की भागीदारी की शुरूआत तो हुई है, पर वह बहुत कम है और कई बार तो लगता है प्रतीकात्मक है।

सिर्फ महिलाओं की बात करें तो रंगमंच पर कही जा रही कहानियाों में महिलाओं को कैसी दिखाई जाती है? उनके किस रूप को तवज्जों दी जाती है? क्या आज भी रंगमंच महिलाओं के दिल में दबी पडी इच्छाऐं और सदियों के शोषण के अनुभवों को खुल कर समाज के सामने रखता है? कभी वह इसकी बात करता भी है तो किस तरह से और कितनी तीव्रता से? ज़रा रंगमंच की ओर देखकर कहें, क्या आज भी रंगमंच सच में स्त्री को इन्सान मानता है? आप कह सकते है कि, यह सिर्फ रंगमंच की ही नहीं, पूरे

समाज की बिमारी है, पर मैं फिर से कहूंगा कि, रंगमंच का वही तो काम है कि वह समाज की बिमारियों को उजागर करें, उसको दूर करने के लिये समाज को आह्वान दे। क्या आज रंगमंच ये कर रहा है?

महिलाओं का रंगमंच के साथ जुडना तभी सार्थक होगा जब वह पितृसत्ताक समाज व्यवस्था के ऊपर चारों ओर से हल्ला बोलें। सिर्फ इतना ही नहीं वह समाज की अन्य असमानतामूलक और शोषणकर्ता व्यवस्थाओं के सामने भी तीखे सवाल करें, उन व्यवस्थाओं को खत्म करने में अन्य शोषित समुदायों को साथ दें। अन्यथा आज की वैयक्तिक और भद्दी आधुनिकता ने जिस तरह से शोषित होते हुए भी महिलाओं को शोषित और शोषक दोनों समुदायों में बांट दिया है, बीसवीं सदी के उत्कृष्ठ नारी मुक्ति आंदोलनों को अपने में समाकर 'म्युज़ियम पीस' बना दिये है, वही वह चालाकी से करती रहेगी और यथार्थ नारी–मुक्ति या आधुनिकता मानव–सभ्यता के लिये और भी दूर जाते रहेंगें।

शायद आपको मैं निराशावादी लगूं, पर मैं निराशावादी नहीं हूँ। पिछली सदी से महिलायें रंगमंच के साथ सक्रिय हुई और उन्होंने रंगमंच को एक हद तक सार्थकता दी, पर वर्तमान युग की चालाक और धाघ आधुनिकता ने महिलाओं और रंगमंच की भागीदारी को तो स्वीकृत कर लिया है, पर उसका निशाना सीमित कर दिया है और दोनों को सार्थक मुक्ति या आधुनिकता से हटाकर बाज़ार के रास्ते घुमा दिया है।

अंत में, मैं दुनियाभर की उन तमाम महिलाओं को सलाम करता हूँ, जिन्होंने आधुनिक रंगमंच को यथार्थ आधुनिकता की दिशा और रूप देने में अपना योगदान दिया है।

–हिरेन गांधी

{'स्त्री–मुक्ति' के लिये}

*****